महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

बी.ए. द्वितीय वर्ष (सेमेस्टर-IV) परीक्षा, जून-2025 (नियमित)

विषय: हिन्दी साहित्य (मॉडल उत्तर कुंजी)

पूर्णांक: 70 समय: 3 घंटे

प्रश्न-पत्र

सामान्य निर्देश:

1. इस प्रश्न-पत्र के दो भाग हैं: भाग-अ और भाग-ब।
2. भाग-अ के सभी दस प्रश्न अनिवार्य हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अधिकतम 50 शब्दों में दीजिए। (10 x 2 = 20 अंक)
3. भाग-ब में कुल दस प्रश्न हैं। किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक इकाई से कम-से-कम एक प्रश्न का चयन करना अनिवार्य है। उत्तर सीमा 400 शब्दों से अधिक। (5 x 10 = 50 अंक)

भाग-अ (अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न) (20 अंक)

(उत्तर सीमा: अधिकतम 50 शब्द प्रति प्रश्न)

1. 'प्रगतिवाद' की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) लिखिए।
2. 'प्रयोगवाद' के किन्हीं दो प्रमुख कवियों के नाम और उनकी एक-एक रचना बताइए।
3. 'छायावाद' में 'रहस्यवाद' से क्या तात्पर्य है?
4. 'नई कविता' और 'पुरानी कविता' में मुख्य अंतर क्या है?
5. 'हिन्दी आलोचना' के जनक (प्रवर्तक) किसे माना जाता है और क्यों?
6. 'रस' के चार प्रमुख अंगों के नाम लिखिए।
7. 'अलंकार' की परिभाषा देते हुए उसके दो प्रमुख भेद बताइए।
8. 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के अनुसार 'हिन्दी आलोचना' का क्या उद्देश्य है?
9. 'श्रृंगार रस' के 'स्थायी भाव' और उसके दो भेदों का उल्लेख कीजिए।
10. 'दोहा छंद' का लक्षण (पहचान) लिखिए।

भाग-ब (निबंधात्मक/दीर्घ उत्तरीय प्रश्न) (50 अंक)

(किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए, प्रत्येक इकाई से कम-से-कम एक प्रश्न अनिवार्य है। उत्तर सीमा: 400 शब्दों से अधिक)

इकाई-I: आधुनिक हिन्दी काव्य (10 अंक)

1. 'छायावाद' हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस कथन के आलोक में 'छायावाद' की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. 'प्रगतिवाद' के मूल आधार को स्पष्ट करते हुए हिन्दी कविता को दिए गए उसके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
3. 'प्रयोगवाद' की सीमाओं और उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई-II: हिन्दी आलोचना एवं समीक्षा सिद्धांत (10 अंक)

4. 'हिन्दी आलोचना' के विकास में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के योगदान को रेखांकित कीजिए।

5. 'समीक्षा के मान' (डॉ. नामवर सिंह) के आधार पर 'हिन्दी आलोचना' की बदलती प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।
6. 'पश्चात्य काव्यशास्त्र' में 'प्लेटो' के कला संबंधी विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

इकाई-III: काव्यशास्त्र: रस, छंद, अलंकार (10 अंक)

7. 'रस' की निष्पत्ति (उत्पत्ति) से संबंधित विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए 'रस सिद्धांत' के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
8. 'अलंकार' किसे कहते हैं? शब्दालंकार और अर्थालंकार में अंतर स्पष्ट करते हुए किन्हीं तीन प्रमुख अलंकारों को उदाहरण सहित समझाइए।
9. 'छंद' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'मात्रिक छंद' और 'वर्णिक छंद' में भेद कीजिए। 'चौपाई' और 'सोरठा' छंदों के लक्षण उदाहरण सहित लिखिए।
10. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर विस्तृत लेख लिखिए: क) 'अज्ञेय' की काव्य-चेतना ख) 'महादेवी वर्मा' के काव्य में वेदना और रहस्यवाद ग) 'मुक्त छंद' का महत्व

उत्तर कुंजी (Complete Answer Key)

भाग-अ के उत्तर (अति लघु उत्तरात्मक)

1. 'प्रगतिवाद' की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ:
    - शोषण का विरोध और शोषितों के प्रति सहानुभूति: प्रगतिवाद ने समाज में व्याप्त पूँजीवादी शोषण और वर्ग-भेद का तीखा विरोध किया और किसान, मजदूर तथा दलित वर्ग के जीवन की पीड़ा को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाया।
    - यथार्थवादी दृष्टिकोण: इसमें कल्पना या भावुकता की बजाय जीवन के कठोर और नग्न यथार्थ का चित्रण किया गया, जिसका उद्देश्य समाज को बदलने की प्रेरणा देना था।
2. 'प्रयोगवाद' के किन्हीं दो प्रमुख कवियों के नाम और उनकी एक-एक रचना:
    - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय': 'हरी घास पर क्षण भर'
    - मुक्तिबोध (गजानन माधव मुक्तिबोध): 'चाँद का मुँह टेढ़ा है'
3. 'छायावाद' में 'रहस्यवाद' से क्या तात्पर्य है? 'छायावाद' में रहस्यवाद से तात्पर्य उस काव्यात्मक अभिव्यक्ति से है जहाँ कवि अज्ञात, अनंत और निराकार सत्ता (परमात्मा) के प्रति प्रेम, विरह, जिज्ञासा और आत्मीयता का भाव प्रकट करता है। इसमें प्रकृति को उस विराट सत्ता का आवरण (पर्दा) मानकर उससे मधुर संबंध स्थापित किया जाता है, जैसे महादेवी वर्मा के काव्य में।
4. 'नई कविता' और 'पुरानी कविता' में मुख्य अंतर क्या है? 'पुरानी कविता' (जैसे छायावाद, प्रगतिवाद) में जहाँ एक व्यापक आदर्शवाद, सामूहिक चेतना और भव्यता का आग्रह था, वहीं 'नई कविता' (1950 के बाद) में व्यक्ति-सत्य, बौद्धिकता, लघु मानव की स्थापना और जीवन के क्षणिक अनुभवों की प्रामाणिकता पर बल दिया गया।
5. 'हिन्दी आलोचना' के जनक (प्रवर्तक) किसे माना जाता है और क्यों? भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी आलोचना का जनक माना जाता है। विशेष रूप से बालकृष्ण भट्ट को 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका में 'सच्ची समालोचना' शीर्षक से आलोचनाएँ प्रकाशित करने के कारण व्यवस्थित आलोचना का प्रवर्तक कहा जाता है।
6. 'रस' के चार प्रमुख अंगों के नाम लिखिए।
    - स्थायी भाव (Sthayi Bhava)
    - विभाव (Vibhava - आलम्बन और उद्दीपन)
    - अनुभाव (Anubhava)
    - संचारी या व्यभिचारी भाव (Sanchari/Vyabhichari Bhava)

7. 'अलंकार' की परिभाषा देते हुए उसके दो प्रमुख भेद बताइए। परिभाषा: काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्वों को 'अलंकार' कहते हैं। ये काव्य में सौंदर्य और चमत्कार उत्पन्न करते हैं। दो प्रमुख भेद:
    - शब्दालंकार: जहाँ शब्द विशेष के प्रयोग से काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है (जैसे: अनुप्रास)।
    - अर्थालंकार: जहाँ शब्द के अर्थ के कारण काव्य में सौंदर्य आता है (जैसे: उपमा, रूपक)।
8. 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के अनुसार 'हिन्दी आलोचना' का क्या उद्देश्य है? शुक्ल जी के अनुसार हिन्दी आलोचना का मुख्य उद्देश्य किसी साहित्यिक कृति (रचना) में निहित 'लोकमंगल की भावना' और 'रस' की अनुभूति को परखना है। उनका बल 'धर्म', 'अर्थ' और 'काम' जैसे जीवन मूल्यों की कसौटी पर साहित्य को जाँचने तथा 'कविता क्या है' जैसे निबंधों के माध्यम से सिद्धांत-स्थापना पर रहा।
9. 'श्रृंगार रस' के 'स्थायी भाव' और उसके दो भेदों का उल्लेख कीजिए।
    - स्थायी भाव: रति (प्रेम)
    - दो भेद:
        - संयोग श्रृंगार: जहाँ नायक और नायिका के मिलन, प्रेमपूर्ण क्रियाकलापों और सुख का वर्णन हो।
        - वियोग/विप्रलम्भ श्रृंगार: जहाँ नायक और नायिका के विरह (जुदाई) का वर्णन हो।
10. 'दोहा छंद' का लक्षण (पहचान) लिखिए। दोहा एक अर्ध-सम मात्रिक छंद है।
    - इसमें चार चरण होते हैं।
    - इसके विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 13-13 मात्राएँ होती हैं।
    - इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे) में 11-11 मात्राएँ होती हैं।
    - सम चरणों के अंत में प्रायः गुरु (S) और लघु (I) वर्ण होता है।

भाग-ब के उत्तर (निबंधात्मक/दीर्घ उत्तरीय)

इकाई-I: आधुनिक हिन्दी काव्य

1. 'छायावाद' हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस कथन के आलोक में 'छायावाद' की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।

छायावाद हिन्दी साहित्य में सन 1918 से 1936 तक चलने वाली वह प्रमुख काव्यधारा है, जिसने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता और नीरस उपदेशात्मकता से विद्रोह किया। यह मूलतः स्वतंत्रता, सौंदर्य और सूक्ष्म प्रेम की अभिव्यक्ति है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'अप्रस्तुत विधान' का विस्तार कहा, जबकि डॉ. नगेंद्र ने इसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' माना। जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन 'पंत' और 'महादेवी वर्मा' इसके चार स्तंभ हैं।

छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ:

1. व्यक्तिवाद की प्रधानता: छायावाद सामूहिक न होकर वैयक्तिक अनुभूतियों पर केंद्रित है। कवि ने अपने सुख-दुख, प्रेम और वेदना को प्रमुखता दी। उदाहरण के लिए, निराला की कविताएँ निजी संघर्षों से भरी हैं और महादेवी की कविताएँ व्यक्तिगत विरह पर केंद्रित हैं।
2. सौंदर्य और प्रेम का उदात्त चित्रण: प्रेम का स्वरूप स्थूल या शारीरिक न होकर सूक्ष्म, मानसिक और आध्यात्मिक हो गया। नारी को केवल भोग्या न मानकर, उसे देवी या प्रेरणास्रोत के रूप में देखा गया। प्रसाद ने कहा, "सुंदरता में सौंदर्य खोजिए, बाह्य आवरण में नहीं।"
3. प्रकृति का मानवीकरण: छायावाद में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं रही, बल्कि वह कवि के सुख-दुख की सहभागी, मित्र, प्रेमिका और विराट सत्ता का आवरण बन गई। पंत ने कहा, "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया/तोड़ प्रकृति से भी माया/बाले, तेरे बाल जाल में/कैसे उलझा दूँ लोचन।"
4. रहस्यवाद और वेदना की अभिव्यक्ति: अज्ञात, अनंत सत्ता के प्रति प्रेम, विरह, जिज्ञासा और समर्पण का भाव। महादेवी वर्मा का संपूर्ण काव्य इस रहस्यमय विरह से भरा है। उनकी वेदना निराशाजनक न होकर रचनात्मक और सुखद है।

5. **कल्पना की अधिकता और पलायनवाद:** इसमें भावुकता और कल्पना की प्रचुरता है, जिसके कारण कुछ आलोचकों ने इस पर जीवन के यथार्थ से दूर होने और पलायनवादी होने का आरोप लगाया।
6. **काव्यात्मक शिल्प और लाक्षणिकता:**
    - **भाषा:** तत्सम प्रधान, संस्कृतनिष्ठ और लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त।
    - **छंद:** नवीन लय की खोज, **मुक्त छंद** (निराला द्वारा) का प्रयोग, जिससे कविता में गतिशीलता आई।
    - **प्रतीक और बिम्ब:** अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने के लिए सूक्ष्म प्रतीकों का प्रयोग किया गया।

उपलब्धि के रूप में महत्व: छायावाद ने हिन्दी कविता को युगों से चली आ रही रूढ़ियों और उपदेशों से मुक्त करके उसे एक **स्वच्छंद, कलात्मक और सूक्ष्म भावात्मक** अभिव्यक्ति प्रदान की। इसने भाषा को नई शक्ति, नए बिंब और नई लय दी, जिससे हिन्दी कविता आधुनिक और विश्वस्तरीय साहित्य के समकक्ष खड़ी हो सकी।

2. 'प्रगतिवाद' के मूल आधार को स्पष्ट करते हुए हिन्दी कविता को दिए गए उसके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

प्रगतिवाद का उदय छायावाद की अति-काल्पनिकता और वैयक्तिक प्रेम की प्रतिक्रिया के रूप में सन 1936 के आस-पास हुआ। यह काव्यधारा मूलतः **मार्क्सवादी दर्शन** से प्रेरित है, जिसने साहित्य को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति न मानकर, उसे समाज परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम माना। 'प्रेमचंद' की अध्यक्षता में 1936 में लखनऊ में स्थापित 'प्रगतिशील लेखक संघ' ने इस धारा को वैचारिक आधार प्रदान किया।

प्रगतिवाद का मूल आधार (दर्शन):

1. **मार्क्सवाद:** प्रगतिवाद का मुख्य वैचारिक आधार कार्ल मार्क्स का 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' और 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' है। इसके अनुसार, समाज दो विरोधी वर्गों (पूँजीपति/शोषक और मजदूर/शोषित) में बंटा है, और वर्ग संघर्ष ही इतिहास की गति का मुख्य प्रेरक है।
2. **सामाजिक यथार्थवाद:** इसमें जीवन की समस्याओं, गरीबी, भूख और सामाजिक विषमता का यथार्थ चित्रण किया गया। कवियों ने कल्पना और वायवीयता को छोड़कर धरती के कठोर सत्य को अपनाया।
3. **उपयोगितावाद:** प्रगतिवादी कवि साहित्य को 'कला के लिए कला' न मानकर, 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत पर बल देते हैं। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जनता को संघर्ष के लिए तैयार करना है।

हिन्दी कविता को प्रगतिवाद का योगदान (मूल्यांकन):

1. **सामाजिक चेतना का विस्तार:** प्रगतिवाद ने कविता के केंद्र को व्यक्ति की भावनाओं से हटाकर समाज की समस्याओं और सामूहिक जीवन की ओर मोड़ दिया। इसने निम्न वर्ग और किसान-मजदूर को पहली बार काव्य का गौरवपूर्ण विषय बनाया।
2. **शोषितों के प्रति सहानुभूति:** नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन जैसे कवियों ने शोषकों के प्रति तीव्र आक्रोश और शोषितों के प्रति गहरी मानवीय संवेदना प्रकट की। इससे कविता में सामाजिक न्याय की भावना प्रबल हुई।
3. **जनवादी भाषा का प्रयोग:** प्रगतिवादी कवियों ने संस्कृतनिष्ठ और दुरूह भाषा की जगह जन-सामान्य की बोली, लोक-मुहावरों और सरल शब्दों का प्रयोग किया, जिससे कविता आम जनता तक पहुँची।
4. **सामयिक समस्याओं का चित्रण:** उन्होंने अकाल, भुखमरी, बेरोजगारी और राजनीतिक विसंगतियों को सीधे अपनी कविताओं में स्थान दिया, जिससे कविता की प्रासंगिकता बढ़ी।
5. **रूढ़ियों का खंडन:** धार्मिक पाखंडों, रूढ़िवादी विचारों और सामंती मूल्यों पर सीधा प्रहार किया गया।

सीमाएँ: यद्यपि इसका योगदान महत्वपूर्ण था, लेकिन प्रगतिवाद की कुछ सीमाएँ भी थीं। कई बार कविता केवल नारेबाजी और प्रचार का माध्यम बनकर रह गई। कला पक्ष और सौंदर्य-विधान की उपेक्षा हुई तथा वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण कविता का भाव पक्ष कमजोर हो गया।

निष्कर्ष: प्रगतिवाद ने हिन्दी कविता को एक नई दिशा दी। इसने साहित्य को जनजीवन से जोड़कर कविता में सामाजिक दायित्व और यथार्थ के चित्रण की परंपरा स्थापित की, जो 'नई कविता' और समकालीन कविता के लिए आधार बनी।

3. 'प्रयोगवाद' की सीमाओं और उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

प्रयोगवाद का सूत्रपात सन 1943 में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तार सप्तक' के प्रकाशन से माना जाता है। यह काव्यधारा प्रगतिवाद की सामाजिक नारेबाजी और छायावाद की रूमानी अतिरंजना दोनों से असंतुष्ट होकर अस्तित्व में आई। 'अज्ञेय' ने घोषणा की कि ये कवि किसी एक वाद से नहीं जुड़े हैं, बल्कि स्वयं 'राहों के अन्वेषी' (खोजकर्ता) हैं।

प्रयोगवाद की सीमाएँ (दोष):

1. अति-बौद्धिकता और दुरूहता: प्रयोगवाद में भावना की बजाय बुद्धि तत्व की प्रधानता हो गई, जिससे कविता आम पाठक के लिए अबोध्य और दुरूह हो गई। कविता केवल बौद्धिक वर्ग तक सीमित होकर रह गई।
2. व्यक्तिवाद की अति: इसमें व्यक्ति की अनुभूतियों को इतना अधिक महत्व दिया गया कि कविता सामाजिक जिम्मेदारी से कट गई। इस कारण इस पर 'अति-व्यक्तिवादी' और 'पलायनवादी' होने का आरोप लगा।
3. कुंठा और निराशा का स्वर: युद्ध, पूंजीवाद और आधुनिक जीवन की विसंगतियों के कारण अनेक कवियों में निराशा, अजनबीपन और कुंठा (Frustration) का भाव अधिक मुखर हुआ, जो कई बार अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया।
4. शिल्प के प्रति अत्यधिक आग्रह: नए प्रतीक, नए बिंब और नए उपमानों के प्रयोग का इतना अधिक आग्रह था कि कई बार ये प्रयोग अनावश्यक और दुर्बोध हो गए।
5. लघुता का अतिरेक: जीवन के बड़े आदर्शों की उपेक्षा कर केवल क्षणिक अनुभवों और लघु मानव के चित्रण पर ही बल दिया गया।

प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ (योगदान):

1. क्षणवाद की प्रतिष्ठा: प्रयोगवादी कवियों ने जीवन के प्रत्येक क्षण और उसकी अनुभूति को प्रामाणिक माना। क्षणवाद ने जीवन की व्यापकता को स्वीकार किया।
2. सत्य की नई खोज: इन्होंने किसी भी स्थापित विचार या सत्य को स्वीकार न करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति के 'स्वयं के सत्य' को खोजा और अभिव्यक्त किया।
3. अभिव्यक्ति का साहस: समाज या नैतिकता की परवाह किए बिना अपनी निजी और वर्जित अनुभूतियों (जैसे यौन कुंठाएँ, अजनबीपन) को अभिव्यक्त करने का साहस किया।
4. शिल्पगत क्रान्ति:
    - बिम्ब और प्रतीक: उपमानों में नवीनता लाई गई। पुराने प्रतीकों की जगह साधारण जीवन से उठाए गए नए बिंबों का प्रयोग हुआ।
    - भाषा: भाषा में नया लचीलापन और खुलापन आया। बातचीत की भाषा, गद्यात्मकता और बिंबों की ताजगी ने कविता को नया आयाम दिया।
    - छंद: मुक्त छंद के साथ-साथ छंदों को तोड़कर नवीन लय की खोज की गई।
5. नई कविता का आधार: प्रयोगवाद ही आगे चलकर 'नई कविता' के रूप में विकसित हुआ, जिसने लघु मानव और उसकी प्रामाणिक अनुभूतियों को स्थापित किया।

निष्कर्ष: प्रयोगवाद अपने नाम के अनुरूप ही, काव्य की विषय-वस्तु और शिल्प दोनों ही स्तरों पर व्यापक प्रयोग की प्रक्रिया थी। इसकी सीमाओं के बावजूद, इसने हिन्दी कविता को जड़ता से मुक्त किया और उसे आधुनिकता तथा बौद्धिकता से संपन्न करके 'नई कविता' के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

इकाई-II: हिन्दी आलोचना एवं समीक्षा सिद्धांत

4. 'हिन्दी आलोचना' के विकास में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के योगदान को रेखांकित कीजिए।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) को हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में 'आधारस्तंभ' या 'युग-प्रवर्तक' माना जाता है। उन्होंने आलोचना को एक निश्चित दिशा, पद्धति और गंभीर वैचारिक आधार प्रदान किया। उनका योगदान न केवल सैद्धांतिक है, बल्कि व्यावहारिक और ऐतिहासिक भी है।

आचार्य शुक्ल के योगदान के मुख्य आयाम:

1. **आलोचना को व्यवस्थित पद्धति देना:** शुक्ल जी से पहले हिन्दी आलोचना का स्वरूप निर्णयात्मक और तुलनात्मक था, जो व्यवस्थित सिद्धांतों पर आधारित नहीं था। शुक्ल जी ने भारतीय काव्यशास्त्र के **रस सिद्धांत** और **लोकमंगल** की अवधारणा को अपनी आलोचना का केंद्रीय आधार बनाया, जिससे हिन्दी आलोचना को पहली बार एक वैज्ञानिक और सुसंगठित पद्धति मिली।
2. **ऐतिहासिक आलोचना की स्थापना:** उनका कालजयी ग्रंथ **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** (1929) हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास माना जाता है। इस ग्रंथ में उन्होंने कवियों और साहित्यकारों को केवल उनकी रचनाओं के आधार पर नहीं, बल्कि तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में रखकर उनका मूल्यांकन किया। उन्होंने आदिकाल से आधुनिक काल तक के साहित्य का कालक्रमानुसार विभाजन करते हुए उसे तार्किक आधार दिया।
3. **सैद्धांतिक आलोचना का विकास:** उन्होंने 'चिंतामणि' (भाग-1 और 2) में संग्रहित अपने निबंधों, जैसे **'कविता क्या है'**, 'श्रद्धा और भक्ति', 'लोभ और प्रीति' आदि के माध्यम से काव्य के मौलिक सिद्धांतों की स्थापना की। 'कविता क्या है' निबंध भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र का अद्भुत समन्वय है, जो काव्य के प्रयोजन और स्वरूप को स्पष्ट करता है।
4. **लोकमंगल की अवधारणा:** शुक्ल जी की आलोचना का अंतिम लक्ष्य **'लोकमंगल की साधना'** रहा। उन्होंने साहित्य को केवल व्यक्तिगत सुख-दुख की अभिव्यक्ति न मानकर, उसे समाज के कल्याण, धर्म और नैतिकता के उत्थान का माध्यम माना। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को इसी आधार पर श्रेष्ठतम कवि घोषित किया, क्योंकि उनके काव्य में 'लोकमंगल' की भावना प्रधान थी।
5. **व्यावहारिक/निर्णयात्मक आलोचना:** उन्होंने जायसी के 'पद्मावत' और तुलसीदास के 'रामचरितमानस' पर गहन समीक्षाएँ लिखीं। उन्होंने कवियों को श्रेणीबद्ध करते हुए उनकी मौलिकता और श्रेष्ठता का निर्णय किया (जैसे: सूर, तुलसी और जायसी का स्थान निर्धारण), जिससे हिन्दी आलोचना को निर्णयात्मकता का ठोस आधार मिला।

निष्कर्ष: आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचना को 'काव्य की आत्मा' और 'सामाजिक उत्तरदायित्व' दोनों से जोड़ा। उन्होंने आलोचना को भावुकता से मुक्त कर ज्ञान, तर्क और सिद्धांत पर आधारित किया, जिससे आलोचना एक गंभीर विधा के रूप में स्थापित हुई। उनके मानदंड आज भी हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और मान्य हैं।

5. 'समीक्षा के मान' (डॉ. नामवर सिंह) के आधार पर 'हिन्दी आलोचना' की बदलती प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।

डॉ. नामवर सिंह (1926-2019) हिन्दी आलोचना में मार्क्सवादी और नव-आलोचना के प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। उनकी पुस्तक **'समीक्षा के मान'** (1958) हिन्दी आलोचना की बदलती दिशाओं और नए मानदंडों को समझने के लिए एक मील का पत्थर है। इस कृति में नामवर सिंह ने साहित्य की सामाजिक भूमिका पर बल दिया और आलोचना को शास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्त करने का आह्वान किया।

'समीक्षा के मान' के आधार पर बदलती आलोचनात्मक प्रवृत्तियाँ:

1. **शुक्लवादी जड़ता से मुक्ति:** नामवर सिंह ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित 'लोकमंगल' और 'रस सिद्धांत' को पूर्णतः अस्वीकार तो नहीं किया, लेकिन उन मानदंडों को **युगसापेक्ष** बनाने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि आलोचना का कार्य केवल काव्य का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि उसके **ऐतिहासिक संदर्भ** और **सामाजिक प्रासंगिकता** को भी देखना है।
2. **सामाजिक यथार्थ की स्वीकृति:** शुक्ल जी जहाँ लोकमंगल पर केंद्रित थे, वहीं नामवर सिंह ने साहित्य में **सामाजिक यथार्थ** और **वर्ग-संघर्ष** के चित्रण को आलोचना का प्रमुख मानदंड बनाया। उन्होंने प्रगतिवादी आलोचना को नए सिरे से स्थापित किया और साहित्य में आम आदमी, शोषित वर्ग के जीवन और संघर्ष की अभिव्यक्ति को महत्व दिया।
3. **शैली और शिल्प की नवीन परख:** नामवर सिंह ने कविता के **शिल्प, संरचना और भाषा** को भी आलोचना का आधार बनाया। उनकी आलोचना केवल 'क्या कहा गया है' (विषय-वस्तु) तक सीमित नहीं रही, बल्कि 'कैसे कहा गया है' (शिल्प और शैली) पर भी केंद्रित हुई।
4. **तुलनात्मक से ऐतिहासिक आलोचना की ओर:** उन्होंने किसी कवि की श्रेष्ठता का निर्णय करने के बजाय उस रचना को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि में रखकर देखने पर बल दिया। यह प्रवृत्ति आलोचना को केवल निर्णयात्मक होने से बचाकर उसे अधिक **विश्लेषणात्मक** और **व्याख्यात्मक** बनाती है।

5. **लोकधर्मी और जनवादी दृष्टिकोण:** नामवर सिंह ने लोकधर्मी साहित्य की महत्ता को स्थापित किया। उन्होंने उस साहित्य को महत्व दिया जो जनजीवन से जुड़ा हो और समाज की समस्याओं पर मुखर हो, न कि केवल पांडित्यपूर्ण और शास्त्रीय साहित्य को।

निष्कर्ष: 'समीक्षा के मान' के माध्यम से डॉ. नामवर सिंह ने हिन्दी आलोचना में एक **प्रगतिशील, यथार्थवादी और जनवादी** दृष्टिकोण की स्थापना की। उन्होंने आलोचना को केवल संस्कृत और प्राचीन सिद्धांतों तक सीमित न रखकर, उसे आधुनिक साहित्य, खासकर प्रगतिवाद और नई कविता की बदलती प्रवृत्तियों के अनुकूल बनाया। यह कृति हिन्दी आलोचना में नव-मार्क्सवादी और आधुनिकतावादी विचारों के प्रवेश का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

6. 'पश्चात्य काव्यशास्त्र' में 'प्लेटो' के कला संबंधी विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

पश्चात्य काव्यशास्त्र में प्लेटो (428-348 ई.पू.) का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने ही पहली बार कला और साहित्य को गंभीरता से विवेचित किया। उनके विचार उनकी कृति **'रिपब्लिक'** और **'ईओन'** में मिलते हैं। प्लेटो ने अपने विचारों का आधार अपने 'आदर्श राज्य' की संकल्पना को बनाया, जिसके कारण वे कला और कविता को केवल 'उपयोगिता' और 'नैतिकता' की कसौटी पर परखते हैं।

प्लेटो के कला संबंधी विचार:

1. **कला का अनुकरण सिद्धांत (Theory of Imitation):** प्लेटो ने संसार को तीन स्तरों में विभाजित किया:
   - **परम सत्य (आइडिया/रूप):** यह ईश्वर द्वारा निर्मित वास्तविक सत्य है (जैसे: कुर्सी का विचार)।
   - **भौतिक वस्तु:** यह कारीगर द्वारा 'आइडिया' की नकल करके बनाई गई वस्तु है (जैसे: बढ़ई द्वारा बनाई गई कुर्सी)।
   - **कला:** यह चित्रकार या कवि द्वारा भौतिक वस्तु की नकल है (जैसे: कुर्सी का चित्र या वर्णन)। अतः, प्लेटो ने कला को **'सत्य से दुगनी दूर' (Twice Removed from Reality)** माना और उसे हेय दृष्टि से देखा।
2. **कविता का निष्कासन (Aesthetic Purge):** प्लेटो ने अपने 'आदर्श राज्य' से कवियों को बाहर निकालने की बात कही, क्योंकि उनके अनुसार कविता और कला हानिकारक हैं:
   - **नैतिक रूप से हानिकारक:** कविता मनुष्य के विवेक को कमजोर करती है और उसमें निम्न भावों (क्रोध, मोह, करुणा) को उत्तेजित करती है।
   - **ज्ञानात्मक रूप से हानिकारक:** कवि भावुक होता है, तर्कसंगत नहीं। इसलिए वह झूठा ज्ञान, भ्रम और असत्य का प्रसार करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन:

1. **उपयोगितावादी दृष्टिकोण:** प्लेटो का दृष्टिकोण अत्यधिक उपयोगितावादी और नैतिकवादी है। वह कला को केवल तभी स्वीकार करते हैं जब वह राज्य और नागरिक के लिए उपयोगी हो। वे कला के **'सौंदर्य'** और **'कलात्मक आनंद'** (Aesthetic Pleasure) की उपेक्षा करते हैं।
2. **कला केवल नकल नहीं:** आधुनिक और परवर्ती आलोचकों (जैसे अरस्तू) ने माना कि कला केवल नकल नहीं है, बल्कि वह कल्पना और सृजनात्मकता के मेल से बनी **पुनर्रचना** है, जो सत्य को नए रूप में अभिव्यक्त करती है।
3. **अपूर्ण ज्ञान:** प्लेटो यह नहीं समझ पाए कि करुणा या त्रासदी का चित्रण दर्शकों के भावों को 'कमजोर' नहीं करता, बल्कि उनका 'परिष्कार' (Catharsis) करता है, जैसा कि उनके शिष्य अरस्तू ने स्थापित किया।
4. **स्थायी महत्व:** इन आलोचनाओं के बावजूद, प्लेटो का महत्व इसलिए है क्योंकि उन्होंने पहली बार **कला की सामाजिक जिम्मेदारी** और **नैतिकता** के संबंध को स्थापित किया। उनके विचारों ने ही अरस्तू जैसे महान दार्शनिकों को कला की सकारात्मक व्याख्या करने के लिए प्रेरित किया।

निष्कर्ष: प्लेटो के कला संबंधी विचार कठोर, नकारात्मक और उपयोगितावादी थे, लेकिन ये विचार पाश्चात्य काव्यशास्त्र की नींव हैं। उन्होंने आलोचना के लिए एक दिशा तय की, जिसने बाद में कला की सामाजिक भूमिका को समझने में मदद की।

इकाई-III: काव्यशास्त्र: रस, छंद, अलंकार

7. 'रस' की निष्पत्ति (उत्पत्ति) से संबंधित विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए 'रस सिद्धांत' के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

रस सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र की आत्मा है। 'रस' का शाब्दिक अर्थ है 'आस्वाद', अर्थात् काव्य को पढ़ने, सुनने अथवा नाटक को देखने से जो अलौकिक आनंद प्राप्त होता है, उसे रस कहते हैं। सर्वप्रथम भरत मुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में रस-सूत्र दिया:

> "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रस निष्पत्तिः।" (विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।)

रस निष्पत्ति के प्रमुख मत (भरत मुनि के सूत्र की व्याख्याएँ): भरत मुनि के इस सूत्र की व्याख्या चार प्रमुख आचार्यों ने की है, जो निम्नलिखित हैं:

1. उत्पत्तिवाद (भट्ट लोलट):
   - मत: रस की उत्पत्ति (उत्पत्ति) मूल रूप से नायक-नायिका (आलंबन) में होती है। सहृदय (दर्शक) अपनी कल्पना से उस रस को मूल पात्र में 'आरोपित' कर लेता है।
   - प्रक्रिया: रस की स्थिति मूल पात्र में।
   - सिद्धांत: यह मत रस को नट में नहीं मानता, बल्कि मूल पात्र में मानता है, इसलिए यह अस्वीकृत हुआ।
2. अनुमितिवाद (शंकुक):
   - मत: नट (अभिनेता) अपनी कुशलता से मूल पात्र के भावों का अभिनय करता है। सहृदय (दर्शक) नट को देखकर नायक-नायिका के भावों का अनुमान (अनुमिति) लगाता है और इसी अनुमान से रस का अनुभव करता है।
   - प्रक्रिया: रस की स्थिति नट में।
   - सिद्धांत: यह मत भी अमान्य हुआ क्योंकि अनुमान से आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती।
3. भुक्तिवाद (भट्ट नायक):
   - मत: इन्होंने 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया को स्वीकार किया। इनके अनुसार, साधारणीकरण से नायक-नायिका और सहृदय के बीच का भेद समाप्त हो जाता है। इसके बाद सहृदय भावों का 'भोग' (भुक्ति) करता है।
   - प्रक्रिया: साधारणीकरण के बाद रस का भोग।
   - सिद्धांत: यह मत साधारणीकरण की शुरुआत करता है, लेकिन 'भोग' शब्द अस्पष्ट है।
4. अभिव्यक्तिवाद (अभिनवगुप्त):
   - मत: यह सर्वाधिक मान्य मत है। अभिनवगुप्त के अनुसार, स्थायी भाव प्रत्येक सहृदय के हृदय में वासना (संस्कार) के रूप में विद्यमान रहते हैं। विभाव आदि से संयोग होने पर ये वासनाएँ अभिव्यक्त हो जाती हैं। रस न उत्पन्न होता है, न आरोपित होता है, बल्कि वह सहृदय के हृदय में अभिव्यक्त होता है।
   - प्रक्रिया: रस की अभिव्यक्ति सहृदय में।
   - सिद्धांत: अभिनवगुप्त ने रस को 'ब्रह्मानंद सहोदर' (ब्रह्मानंद के समान) माना और उसे शुद्ध, अलौकिक चेतना का क्षण कहा।

रस सिद्धांत का महत्व:

- काव्य का प्राण तत्व: यह सिद्धांत काव्य और नाटक की कसौटी है। रस के बिना काव्य निष्प्राण माना जाता है।
- कला का चरम लक्ष्य: यह बताता है कि कला का अंतिम उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि हृदय को रसानुभूति के स्तर तक ले जाना है।
- मनोवैज्ञानिक आधार: यह सिद्धांत मानव मन में स्थायी रूप से विद्यमान भावों (रति, शोक, क्रोध आदि) को स्वीकार करता है, जिनका परिष्कार काव्य द्वारा होता है।
- भारतीय सौंदर्यशास्त्र की नींव: रस सिद्धांत भारतीय सौंदर्यशास्त्र की मौलिक और केंद्रीय अवधारणा है, जिसने आनंद की अनुभूति को अध्यात्म से जोड़ा।

8. 'अलंकार' किसे कहते हैं? शब्दालंकार और अर्थालंकार में अंतर स्पष्ट करते हुए किन्हीं तीन प्रमुख अलंकारों को उदाहरण सहित समझाइए।

अलंकार की परिभाषा: अलंकार का शाब्दिक अर्थ है 'आभूषण' या 'गहना'। जिस प्रकार आभूषण धारण करने से शरीर की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्त्वों को अलंकार कहते हैं। आचार्य दण्डी ने कहा है, "काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।" (काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।)

शब्दालंकार और अर्थालंकार में अंतर:

विशेषता	शब्दालंकार (Word Figure)	अर्थालंकार (Sense Figure)
आधार	शब्द-विशेष पर आश्रित। यहाँ शब्द को बदलने पर अलंकार समाप्त हो जाता है।	अर्थ पर आश्रित। शब्द का पर्यायवाची रखने पर भी अलंकार का सौंदर्य बना रहता है।
उद्देश्य	चमत्कार, नाद सौंदर्य (ध्वनि की सुंदरता) और वर्णों की आवृत्ति द्वारा आकर्षण उत्पन्न करना।	भाव, अर्थ की गहराई, उपमा या समानता द्वारा कथन की सुंदरता बढ़ाना।
उदाहरण	अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति।	उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, अतिशयोक्ति।

तीन प्रमुख अलंकारों का उदाहरण सहित वर्णन:

1. अनुप्रास अलंकार (शब्दालंकार):
    - लक्षण: जब किसी काव्य पंक्ति में एक ही वर्ण की आवृत्ति एक से अधिक बार होती है।
    - उदाहरण: *"चारु चंद्र की चंचल किरणें, खेल रही थीं जल थल में।"*
        - स्पष्टीकरण: यहाँ 'च' वर्ण की आवृत्ति बार-बार होने से नाद सौंदर्य और चमत्कार उत्पन्न हुआ है।
2. उपमा अलंकार (अर्थालंकार):
    - लक्षण: जहाँ दो भिन्न वस्तुओं में उनके रूप, गुण या धर्म के आधार पर समानता या तुलना प्रदर्शित की जाती है।
    - उदाहरण: *"पीपर पात सरिस मन डोला।"*
        - स्पष्टीकरण: मन (उपमेय) की तुलना पीपल के पत्ते (उपमान) से की गई है। 'सरिस' (समान) वाचक शब्द है और 'डोलना' साधारण धर्म है।
3. रूपक अलंकार (अर्थालंकार):
    - लक्षण: जहाँ उपमेय (जिसकी तुलना की जाए) पर उपमान (जिससे तुलना की जाए) का अभेद आरोप कर दिया जाता है। अर्थात् दोनों में कोई अंतर नहीं माना जाता और उपमेय को ही उपमान मान लिया जाता है।
    - उदाहरण: *"चरण-कमल बंदौं हरिराई।"*
        - स्पष्टीकरण: यहाँ 'चरण' (उपमेय) पर 'कमल' (उपमान) का आरोप किया गया है। कवि हरि के चरणों को कमल जैसा न कहकर, साक्षात् कमल ही कह रहा है।

9. 'छंद' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'मात्रिक छंद' और 'वर्णिक छंद' में भेद कीजिए। 'चौपाई' और 'सोरठा' छंदों के लक्षण उदाहरण सहित लिखिए।

छंद का स्वरूप: छंद का अर्थ है 'बंधन' या 'नियम'। काव्य में वर्णों (अक्षरों) की संख्या, क्रम, मात्राओं की गणना, यति (विराम) और गति (लय) के नियमों का पालन जहाँ किया जाता है, उसे छंद कहते हैं। छंद कविता को संगीतात्मकता, लय और गेयता (गान करने की योग्यता) प्रदान करता है। छंद के ज्ञान को छंदशास्त्र या पिंगलशास्त्र कहते हैं।

छंद के भेद (आधारभूत अंतर):

भेद	मात्रिक छंद	वर्णिक छंद

आधार	मात्राओं की संख्या और गणना पर आधारित। वर्ण के गुरु-लघु होने से मात्रा प्रभावित होती है।	वर्णों की संख्या और उनके क्रम (गुरु-लघु) पर आधारित। मात्राओं की गणना आवश्यक नहीं।
नियम	हर चरण में मात्राओं की संख्या निश्चित होती है।	हर चरण में वर्णों की संख्या और उनका क्रम (गण-व्यवस्था) निश्चित होता है।
उदाहरण	दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला, हरिगीतिका।	इन्द्रवज्रा, सवैया, कवित्त, मालिनी।

दो प्रमुख मात्रिक छंदों के लक्षण और उदाहरण:

1. **चौपाई छंद:**
    - **लक्षण:** यह सम मात्रिक छंद है।
        - इसके चार चरण होते हैं।
        - प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं।
        - चरण के अंत में प्रायः गुरु (S) और लघु (I) वर्ण नहीं होते।
    - **उदाहरण:**

```
जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। (I I I S I I S I I S I) = 16
जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥ (I I S I I I S I I S I) = 16
राम दूत अतुलित बल धामा। (S I S I I I I I S I S) = 16
अंजनि पुत्र पवनसुत नामा॥ (I I I S I S I I S I S) = 16
```

2. **सोरठा छंद:**
    - **लक्षण:** यह अर्ध-सम मात्रिक छंद है और यह दोहा छंद का उल्टा होता है।
        - इसके विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 11-11 मात्राएँ होती हैं।
        - इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे) में 13-13 मात्राएँ होती हैं।
        - विषम चरणों के अंत में प्रायः यति होती है।
    - **उदाहरण:**

```
मुक होई बाचाल, (I I S I S S) = 11
पंगु चढ़ै गिरिबर गहन। (I I S I S I I I I) = 13
जासु कृपा सो दयाल, (S I I S I I S I) = 11
द्रवउ सकल कलि मल दहन॥ (I I I I I I I I I S I) = 13
```

10. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर विस्तृत लेख लिखिए:

क) 'अज्ञेय' की काव्य-चेतना

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (1911-1987) हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता के जनक माने जाते हैं। 'तार सप्तक' (1943) के माध्यम से उन्होंने काव्य को एक नई दिशा दी। उनकी काव्य-चेतना पर आधुनिकता, व्यक्तिवाद और गहन बौद्धिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

अज्ञेय की काव्य-चेतना के प्रमुख बिंदु:

1. **क्षणवाद और व्यक्ति-सत्य की खोज:** अज्ञेय ने जीवन के प्रत्येक 'क्षण' और 'अनुभूति' को सत्य माना। उन्होंने महानता या भव्यता की तलाश न करके, जीवन के छोटे-छोटे क्षणों में निहित सौंदर्य और सत्य को खोजा। उनका मानना था कि व्यक्ति

का 'सत्य' ही सबसे बड़ा सत्य है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति 'राहों का अन्वेषी' है, जिसकी राहें भिन्न हो सकती हैं।

2. **बौद्धिकता और आत्म-संघर्ष:** अज्ञेय की कविता भावुकता से मुक्त है। उसमें गहरी बौद्धिकता और दार्शनिक चिंतन का समावेश है। वे आधुनिक मनुष्य के **अस्तित्ववाद** (Existentialism) और जीवन के अजनबीपन के बोध को व्यक्त करते हैं। उनकी कविता 'असाध्य वीणा' इसी आत्म-संघर्ष और आत्म-समर्पण की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।
3. **यथार्थ के प्रति आग्रह:** अज्ञेय ने केवल बाहरी यथार्थ (सामाजिक) को ही नहीं, बल्कि मनुष्य के आंतरिक यथार्थ (मनोवैज्ञानिक) को भी अभिव्यक्त किया। 'कितनी नावों में कितनी बार' में वे यात्रा, स्मृति और जीवन के अनसुलझे रहस्यों को टटोलते हैं।
4. **प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति:** उनका प्रेम चित्रण छायावाद की रहस्यमयता से अलग और प्रगतिवाद के स्थूलता से भिन्न है। वे प्रेम को एक निजी और सूक्ष्म अनुभव मानते हैं, जैसे उनकी प्रसिद्ध कविता 'हरी घास पर क्षण भर' में प्रकृति और प्रेम का एक साथ चित्रण है।
5. **शिल्पगत प्रयोग और नवीन उपमान:** अज्ञेय की सबसे बड़ी देन उनके शिल्पगत प्रयोग हैं। उन्होंने पारंपरिक उपमानों को त्यागकर साधारण जीवन से, विज्ञान से और दैनिक वस्तुओं से नए उपमान लिए। उदाहरणार्थ, "यह दीप अकेला स्नेह भरा," या "नदी के द्वीप"। उन्होंने भाषा को अधिक गत्यात्मक, सटीक और बिंबात्मक बनाया।

निष्कर्ष: अज्ञेय की काव्य-चेतना आधुनिक हिन्दी कविता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करती है। उन्होंने कविता को वैयक्तिक चिंतन और बौद्धिक विश्लेषण का माध्यम बनाया, जिससे हिन्दी कविता केवल भाव-प्रवणता से निकलकर विचार-प्रधान भी बन सकी।

ख) 'महादेवी वर्मा' के काव्य में वेदना और रहस्यवाद

महादेवी वर्मा (1907-1987) छायावाद की प्रमुख कवयित्री हैं, जिन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' कहा जाता है। उनके काव्य की दो मुख्य विशेषताएँ हैं: **वेदना** (पीड़ा/विरह) और **रहस्यवाद**। महादेवी के लिए वेदना केवल दुख नहीं, बल्कि वह साधना है, जो उन्हें अज्ञात प्रियतम तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

महादेवी के काव्य में रहस्यवाद:

- **अज्ञात सत्ता से प्रेम:** महादेवी ने एक अज्ञात, निराकार और अनंत सत्ता (परमात्मा) को अपना प्रियतम माना है। उनका प्रेम लौकिक न होकर अलौकिक है, जहाँ वे विरह में ही आनंद पाती हैं।
  - उदाहरण: *"तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।"*
- **प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग:** उनके काव्य में बादल, दीपक, आँसू, पतंग और तारे जैसे प्रतीक उस अज्ञात प्रियतम और आत्मा के बीच के संबंध को दर्शाते हैं। दीपक प्रतीक है आत्मा का और आँसू हैं विरह-साधना के फूल।
- **दार्शनिक आधार:** उनका रहस्यवाद उपनिषदों के अद्वैतवाद और बौद्ध दर्शन के करुणावाद से प्रभावित है। वे आत्मा और परमात्मा के मिलन की उत्सुकता को ही अपने काव्य का विषय बनाती हैं।

महादेवी के काव्य में वेदना:

- **वेदना का स्वरूप:** उनकी वेदना निराशा या अवसाद (Depression) नहीं है, बल्कि यह रचनात्मक और शुभ्र है। यह विरह-जनित पीड़ा उन्हें प्रियतम के अधिक निकट लाती है। उनके अनुसार, "मुझे मानव जीवन में जो कुछ मधुर और कोमल मिला है, वह वेदना की देन है।"
- **विरह की प्रधानता:** महादेवी के काव्य में संयोग (मिलन) की अपेक्षा विरह की अभिव्यक्ति ही अधिक है। वे विरह को ही जीवन का सत्य मानती हैं।
  - उदाहरण: *"मैं नीर भरी दुख की बदली।"* (यहाँ वे स्वयं को विरह से भरी बदली के रूप में देखती हैं।)
- **वेदना में आनंद:** वे अपनी वेदना में लीन रहकर एक आत्मिक सुख का अनुभव करती हैं। यह पीड़ा उन्हें संसार की क्षणभंगुरता से मुक्त कर देती है।

निष्कर्ष: महादेवी वर्मा का काव्य हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। उनका रहस्यवाद और वेदनावाद किसी रूढ़ि का अनुसरण न करके, उनके निजी और गहन अनुभवों से उपजा है। उन्होंने नारी-सुलभ भावनाओं को उदात्त, गंभीर और दार्शनिक आधार प्रदान करके हिन्दी कविता में एक नई भावात्मक गहराई स्थापित की।

ग) 'मुक्त छंद' का महत्व

मुक्त छंद (Free Verse) आधुनिक हिन्दी कविता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह छंद, कविता को पारंपरिक मात्रिक और वर्णिक छंदों के कठोर बंधन से मुक्त करता है। इसे 'केंचुआ छंद' या 'रबर छंद' भी कहा जाता था, लेकिन आधुनिकता के संदर्भ में यह सबसे सशक्त छंद-प्रणाली सिद्ध हुई। हिन्दी में इसका प्रयोग सर्वप्रथम सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने किया था।

मुक्त छंद का स्वरूप और लक्षण:

1. नियम-मुक्ति: इसमें वर्णों या मात्राओं की संख्या का कोई निश्चित नियम नहीं होता। कवि अपनी इच्छानुसार पंक्ति को छोटा या बड़ा कर सकता है।
2. लय की प्रधानता: यह छंद नियम-मुक्त होते हुए भी लय-मुक्त नहीं होता। यह अर्थ की लय (Sense Rhythm) या भाव की लय पर आधारित होता है।
3. यति और गति: इसमें यति (विराम) और गति (प्रवाह) का निर्धारण कवि के भाव और अर्थ के अनुसार होता है, न कि मात्राओं की गणना के अनुसार।

मुक्त छंद का महत्व:

1. भाव की मुक्ति: मुक्त छंद ने कवि को अपनी भावनाओं और विचारों को बिना किसी मात्रात्मक बंधन के सीधे अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता दी। जटिल, आधुनिक और अमूर्त भावों को व्यक्त करने में यह अत्यंत सफल रहा।
2. गद्यात्मकता और सहजता: इसने कविता को गद्य के निकट लाकर उसकी सहजता बढ़ाई। इससे जनजीवन की बातचीत की लय और मुहावरे कविता में आसानी से समाहित हो सके।
3. यथार्थ चित्रण की क्षमता: प्रगतिवाद और नई कविता में सामाजिक यथार्थ, कुंठा, निराशा और विसंगतियों के चित्रण के लिए मुक्त छंद सबसे उपयुक्त माध्यम बना, क्योंकि यह जीवन की टूटी-फूटी और विसंगत लय को व्यक्त कर सकता था।
4. निराला का योगदान: निराला ने 'जुही की कली' और 'परिमल' जैसी रचनाओं में मुक्त छंद का सफल प्रयोग किया। उन्होंने